अम्बिका प्रसाद मिश्र

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(Ambika Prasad Mishra

v.

State of Uttar Pradesh and Others)

(9 मई, 1980)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, वी० डी० तुलजापुरकर और ए० पी० सेन)

उत्तर प्रदेश इम्पोजिशन ऑफ सीलिंग आन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1961(1961 का 1) (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 31-क)—उक्त अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अतिक्रमण के रूप में चुनौती दिया जाना—उक्त अधिनियम, संविधान के अनुच्छेद 31-क के संरक्षण के अन्तर्गत आता है और उससे किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण नहीं होता है।

संविधान, 1950 —अनुच्छेद 141 —प्रत्येक नए आविष्कार या तर्कसंगत नवीनता के आधार पर आबद्धकर पूर्वोदाहरण को अकृत नहीं किया जा सकता या उस पर पुनर्विचार के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

इन अपीलों, रिट पिटीशनों और विशेष इजाज़त पिटीशनों में पिटीशनरों ने उत्तर प्रदेश इम्पोजिशन ऑफ सीलिंग ऑन लैंड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1961 (1961 का 1) को सांविधानिक दृष्टिकोण से विधि-विरुद्ध होने के रूप में चुनौती दी है। अपीलें, रिट पिटीशन और विशेष इजाजत पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—अनुच्छेद 31 की व्यापक शब्दावली स्पष्ट रूप से उत्तर प्रदेश इम्पोजिशन ऑफ सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1961 को अपनी संरक्षणशील परिधि के भीतर लाती है और मोटे तौर पर उस अनुच्छेद

1980(5) eILR(PAT) SC 118

का निरोधक प्रभाव उक्त अधिनियम में उल्लिखित सीमा तक उसको अविधिमान्य करने के विरुद्ध अधिनियम को छूट देने के लिए पर्याप्त है। (पैरा 5)

अनुच्छेद 31-क का क्षेत्र व्यापक है तथा वह निस्संदेह रूप से भूमि की अधिकतम सीमा से सम्बन्धित विधान को परिवेष्ठित करता है। भूमि का समान वितरण, जोत की अधिकतम सीमा के आरोपण द्वारा स्वामित्व के एकाधिकार का उन्मूलन और विभिन्न योजनाओं और नीतियों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनः नियोजन अनुच्छेद 31क की परिधि के अन्तर्गत आते हैं। अनुच्छेद 31क जोत की अधिकतम सीमा सम्बन्धी विधान (अनुच्छेद 14, 19 और 31 से सुसज्जित) से सम्बन्धित सब आक्षेपों को नामंजूर करता है। (पैरा 6)

निर्दिष्ट-निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 1 एस० सी० सी० 248 : **मेनका गांधी बनाम भारत संघ** (Menka Gandhi *v.* Union of India);	12
[1975]	(1975) आर० डी० 366 : **क्षेत्रपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (Kshetrapal Singh *v.* State of Uttar Pradesh);	34
[1974]	[1974] 1 एस० सी० आर० 253 : **एग्रीकलचरल एण्ड इण्डस्ट्रियल सिंडिकेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (Agricultural and Industrial Syndicate Ltd. *v.* State of Uttar Pradesh and Others);	34
[1974]	ए० आई० आर० 1974 पंजाब-हरियाणा 162 : **सुच्चा सिंह बनाम राज्य** (Succha Singh *v.* State);	29

1980(5) eILR(PAT) SC 118

[1973]	[1973] 3 उम० नि० प० 1222=[1974] 1 एस० सी० आर० 253 केरल राज्य बनाम ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लिमिटेड [State of Kerala v. Gwalior Rayon Silk Manufacturing (Wvg.) Co. Ltd.];	5,6
[1973]	[1973] 1 एस० सी० आर० 356 : करन दीवान मिल्स प्रोड्यूस कम्पनी लिमिटेड बनाम केरल राज्य (Karan Diwan Mills Produce Co. Ltd. v. State of Kerala);	5
[1973]	[1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1 : केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य और अन्य (Keshvanand Bharati v. State of Kerala and Others);	5, 6
[1967]	[1967] 2 एस० सी० आर० 762 : आई० सी० गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (I. C. Golaknath v. The State of Punjab);	5
[1965]	[1965] 1 एस० सी० आर० 32 : रणजीत बनाम राज्य (Ranjit v. State);	6
[1952]	ए० आई० आर० 1952 एस० सी० 252 : बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह (State of Bihar v. Kameshwar Singh);	3
[1944]	321 यू० एस० 649 : स्मिथ बनाम आलराइट (Smith v. Alwright).	5

1980(5) eILR(PAT) SC 118

आरम्भिक अधिकारिता : 1977 की रिट पिटीशन सं० 1543.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन ।

इसके साथ

रिट पिटीशन सं० 1542/77 और सिविल अपील सं० 1379/77, रिट पिटीशन सं० 838/78, 2360-2363/78 और विशेष इजाज़त पिटीशन (सिविल) सं० 1727/79 तथा 1978 की 2333 और 2530.

तथा

1978 की विशेष इजाज़त पिटीशन (सिविल) सं० 2599 और 1979 की रिट पिटीशन सं० 228.

पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन 1542, 1543 838 और सिविल अपील 1379 में)	श्री एम० एस० गुप्त
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाज़त पिटीशन 1727, 2333 और 2580 में)	श्री अरविन्द कुमार, श्रीमती लक्ष्मी अरविन्द और श्री प्रकाश गुप्त
पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन 2360-63 में)	सर्वश्री पी० आर० मृदुल, आर० के० जैन और सुकुमार साहू
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाज़त पिटीशन 2599 तथा रिट पिटीशन 228 में)	सर्वश्री वेद व्यास, एस० के० गुप्त और ए० के० शर्मा
हाजिर होने वाले **प्रत्यर्थियों की ओर से**	श्री० बी० पी० सिंह चौहान, अपर महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश और श्री० ओ० पी० राणा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया ।

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

यह निर्णय कृषि जोत की सीमा से सम्बन्धित उत्तर प्रदेश के बहुत से मामलों से सम्बन्धित है और नीचे उल्लिखित रिट पिटीशनों, सिविल अपीलों

और विशेष इजाज़त के लिए पिटीशनों* का विनिर्दिष्ट रूप से निपटारा करता है।

2. इस मुकदमें के स्रोत का व्यापक सिद्धान्त उस रूप में भूमि सुधार के विरुद्ध नहीं है किन्तु सुसंगत विधान में भेदभाव है जो उसे सांविधानिक दृष्टिकोण से विधि विरुद्ध बनाता है।

3. सामाजिक न्याय की वचनबद्धता के बारे में भारतीय राष्ट्र की प्रगति कृषि सुधार की प्रक्रिया की गति द्वारा नियंत्रित है। हमारे देश की प्रगति के इस मुख्य तथ्य ने भूमि वितरण और उसके अभिन्न साथी जोत की अधिकतम सीमा को विधान का एक आकर्षक बिन्दु बनाया है। जब कई भूमि धारकों के साथ मुकदमेंबाजी में मुकाबले के कारण इस महत्वपूर्ण विकासशील नीति के कार्यान्वयन को आघात पहुंचा तो संसद् ने अपनी संविधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् प्रथम वर्ष में ही प्रथम संशोधन के रूप में अनुच्छेद 31क अधिनियमित करके ऐसे कानूनी अभ्युपाय का प्रभावी रूप से पूर्वाधिकार करके उसे अजेय रूप से संरक्षण प्रदान किया। संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 के प्रवृत्त होने के परिणामस्वरूप इस न्यायालय ने बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह[1] के मामले में भूमि सुधार विधियों को मूल अधिकारों के अतिक्रमणकारी होने के रूप में दी गई चुनौतियों को अस्वीकार कर दिया था। किन्तु कृषि सुधार विधानों और कभी भी समाप्त न होने वाले मुकदमेंबाजी के बीच सतत लड़ाई के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जहां ऐसी प्रत्येक अधिनियमिति के बारे में अनिवार्यतः कई रिट पिटीशन फाइल किए गए और अनुच्छेद 31क के बावजूद भी ऐसी अधिनियमितियों की शक्तियों को चुनौती दी गई, फिर अनुच्छेद 31ख, 31ग और 31घ जैसे बहुत ही व्यापक उपबन्धों का कहना ही क्या। इस न्यायालय में न्याय सम्बन्धी भूदृश्य अपीलों, रिट पिटीशनों और विशेष इजाज़त के लिए पिटीशनों से बुरी तरह भर गया है और इनमें से प्रत्येक का सामान्य लक्षण थोड़े से भूस्वामियों और बहुत से भूमिहीनों के विषम वातावरण में जोत की अधिकतम सीमा आरोपण सम्बन्धी राज्य विधियों में से किसी की भी मान्यता को चुनौती देना है यद्यपि न्यायालय भूमि अर्जन और वितरण की विधायी नीतियों की चुनौती को उसके सांविधानिक गुणागुण के आधार पर

* 1977 के रिट पिटीशन सं० 1543, 1542, 1978 के 838 और 2360-63 तथा 1979 का 228, 1977 की सिविल अपील सं० 1379 और 1979 का विशेष इजाज़त पिटीशन सं० 1727, 1978 का 2333, 2539, 2589.

[1] ए० आई० आर० 1952 एस० सी० 252.

विनिश्चत करने के लिए बाध्य है और हम उत्तर प्रदेश इम्पोजीशन ऑफ लैंड होल्डिंग्स ऐक्ट, 1960 (उत्तर प्रदेश अधिकतम जोत सीमा आरोपण अधिनियम, 1960) जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) के विशेष निर्देश से इस समस्या का हल करेंगे। कई काउन्सेलों ने बहस की है और बहुत से आक्षेप किए गए हैं किन्तु हम केवल उन दलीलों पर ही विचार करेंगे जिन पर गम्भीरता से बल दिया गया है और ऐसी अन्य दलीलों को छोड़ देंगे जिन्हें या तो केवल औपचारिक रूप से उल्लिखित किया गया है या जिन पर कोई बहस नहीं की गई है या जिन्हें केवल नाम मात्र के लिए उल्लिखित किया गया है। इस निर्णय में हम अनुच्छेद 31क, 31ख और 31ग के सांविधानिक संशोधनों की शक्तियों से सम्बन्धित बड़े विवाद्यक पर विचार नहीं करेंगे चूंकि उन पर हाल ही में निपटाए गए अन्य मामलों में विचार किया जा चुका है। वास्तव में, भूमि सुधार का इतिहास अपने विधायी आयाम में न्यायिक निर्णयों और सांविधानिक संशोधनों के बीच सदैव ही विवाद का विषय रहा है।

4. प्रारम्भिक चर्चा के रूप में अधिनियम के ढांचे की सूक्ष्म परीक्षा की जानी चाहिए ताकि अभिकथित सांविधानिक त्रुटियों को उचित परिप्रेक्ष्य में देखा जा सके। अधिनियम को बृहत् नाम द्वारा उत्तर प्रदेश में अधिकतम जोत सीमा आरोपण को अधिनियम के मुख्य प्रयोजन के रूप में दर्शाया गया है और अधिनियम की उद्देशिका इस बात को और स्पष्ट करती है। ये सब बातें अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में स्पष्ट रूप से उल्लिखित की गई हैं, जो इस प्रकार हैं—

> "भूमिहीन कृषि मजदूरों के लिए यथासम्भव भूमि उपलभ्य करवा करके भूमि का अधिकतम समान मात्रा में वितरण करने और सहकारिता के आधार पर कृषि करने के लिए उपबन्ध करने तथा भूमि में उपलभ्य स्रोतों के भाग को परिरक्षित करने के लिए उपबन्ध करने की दृष्टि से, ताकि उत्पादन में वृद्धि की जा सके, तथा राज्य के स्वामित्व के फार्मों में वैज्ञानिक आधार पर कृषि करा करके अकाल के वर्षों के लिए खाद्यान्न का सुरक्षित भण्डार बनाया जा सके, विद्यमान बड़ी जोतों की अधिकतम सीमा का आरोपण करना समीचीन है। ग्रामीण समाज को उनकी अपनी आवश्यकताओं के लिए जैसे कि जलाऊ लकड़ी और पशु आहार के भण्डार स्थापित करने के लिए कुछ भूमि की व्यवस्था करना आवश्यक है। इसलिए विधेयक समाज के

कमजोर वर्ग के आर्थिक हित की अभिवृद्धि करने और सामूहिक हित का साधन करने के लिए पुरःस्थापित किया जा रहा है।"

5. इस प्रकार हमें कृषि सुधार के कानूनी मत के बारे में मालूम होता है और इसलिए अधिनियम की सांविधानिकता को अनुच्छेद 31क की कसौटी पर कसना होगा जो कि भूमि सुधार से सम्बन्धित विधियों के लिए एक सुसंगत रक्षोपाय है। यहां पर भी हमें इस बात का उल्लेख करना चाहिए कि जब हम सांविधानिक छूट की परिधि को निर्दिष्ट करते हैं तब अनुच्छेद 31क कृषि सुधार सम्बन्धी उपाय प्रदत्त करता है। हम उस उपबन्ध पर हमारे विनिश्चय को आधारित नहीं करते हैं। स्वतंत्र रूप से अनुच्छेद 31क आक्षेपित विधान, सांविधानिक अतिक्रमण का प्रतिरोध कर सकता है, इसलिए अनुच्छेद 31 के सम्बन्ध में कोई और चुनौती अनुपयोगी है। उस उपयोगी उपबन्ध की व्यापक शब्दावली स्पष्ट रूप से वर्तमान अधिनियम को अपनी संरक्षणशील परिधि के भीतर लाती है और मोटे तौर पर उस अनुच्छेद का निरोधक प्रभाव अधिनियम में उल्लिखित सीमा तक उसको अविधिमान्य करने के विरुद्ध अधिनियम को छूट देने के लिए पर्याप्त है। इस प्रबल तर्क को कि स्वयं अनुच्छेद 31क उसी प्रकार शून्य है, जैसे कि वह संविधान के मूल ढांचे के अतिक्रमणकारी होने पर शून्य होता है, आन्ध्र प्रदेश के बहुत से सम्बन्धित मामलों में हमारे विद्वान बन्धु न्यायाधिपति भगवती द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। इसलिए अनुच्छेद 31क का तावीज महत्वपूर्ण है जहां तक कि उसकी परिधि है किन्तु उसकी परिधि के बाहर यह अभी भी संभव है जैसे कि विद्वान काउन्सेल ने किसी एक या दूसरी धारा को अकृत करने के लिए बहुत ही प्रबल तर्क देने का प्रयत्न किया है। निश्चत रूप से विधानमण्डल इस अन्ध विश्वास में पागल की तरह नहीं चल सकता कि अनुच्छेद 31क सर्वशाक्तिमान है। हम इन अभिकथित त्रुटियों की सम्यक् अनुक्रम में परीक्षा करेंगे। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि ऐसे कई विनिश्चयों के अतिरिक्त भी, जिसमें अनुच्छेद 31क का समर्थन किया गया है, जैसा कि **गोलक नाथ के मामले**[1] में न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विनिश्चय किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम में विधायी शक्ति का अतिक्रमण किया है, फिर भी स्पष्ट रूप से यह घोषित किया गया था कि उक्त संशोधन और उसके समान कुछ अन्य संशोधन भविष्यलक्षी रूप से उलटने के सिद्धान्त

[1] [1967] 2 एस० सी० आर० 762.

1980(5) eILR(PAT) SC 118

के आधार पर विधिमान्य बने रहेंगे। हमारे प्रयोजनों के लिए परिणाम यह है कि **गोलकनाथ के मामले**[1] में भी अनुच्छेद 31क को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था। **गोलकनाथ के मामले**[1] के निर्णय को उलटने वाले पश्चात्वर्ती मामलों में अभिलिखित टिप्पण भी अनुच्छेद 31क की शक्तियों के प्रतिकूल नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि **केशवानन्द भारती के मामले**[2] में अनुच्छेद 31क को संसद् की संशोधन शक्ति से परे रूप में चुनौती दी गई थी और इसलिए वह अविधिमान्य है। किन्तु बहुत से वरिष्ठ काउन्सेलों के पांडित्यपूर्ण तर्क सुनने के पश्चात् इस न्यायालय के 13 न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने स्पष्ट शब्दों में अनुच्छेद 31क की शक्तियों को कायम रखा था। वह विनिश्चय निर्णीतानुसरण के सामान्य आधार पर और अनुच्छेद 141 के सांविधानिक आधार पर आबद्ध है। प्रत्येक नया अविष्कार या तर्कसंगत नवीनता आबद्धकर पूर्वोदाहरण को अकृत नहीं कर सकती या उस पर पुनर्विचार के लिए बाध्य नहीं कर सकती। इस दृष्टि से वास्तविक आवश्यकताओं से सम्बन्धित अन्य दलीलें, जो चमकदार हों और सृजनात्मक कौशल से बलपूर्वक दी गई हो, उन बातों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित नहीं कर सकती जो मूल अधिकारों की बातों के महाकाव्य द्वारा पवित्र प्रतिपादना के रूप में राष्ट्र के मार्गदर्शन के लिए अधिकथित की गई थीं। **कामेश्वर सिंह के मामले**[3] और **गोलकनाथ के मामले**[1] से प्रारम्भ होकर **केशवानन्द भारती के मामले**[2] तक और **करन दीवान मिल्स प्रोडयूस कम्पनी लिमिटेड** बनाम **केरल राज्य**[4] तथा **केरल राज्य** बनाम **ग्वालियर रेयन सिल्क मैन्युफैक्चरिंग (वीविंग) कम्पनी लिमिटेड**[5] के मामले तक और पश्चात् अनुच्छेद 31क की, जैसा कि विद्यमान था, न्यायिक संवीक्षा होती रही है, यद्यपि जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, हम अनुच्छेद 31क पर निष्कर्ष आधारित नहीं करते हैं। इस पर भी मूल बात यह है कि प्रत्येक अवसर पर राष्ट्र के संविधान को न्यायिक पुनर्विलोकन द्वारा सतत् रूप से अनिश्चितता में नहीं रखा गया है क्योंकि इससे महत्वपूर्ण बातों पर सब विधायी और प्रशासनिक कार्यवाही निरन्तर अनिश्चय द्वारा निष्प्रभावी होती हैं और इससे न्यायालयिक प्रहार की धमकी की ओर ध्यान

---

[1] [1967] 2 एस० सी० आर० 762.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1.

[3] ए० आई० आर० 1952 एस० सी० 252.

[4] [1973] 1 एस० सी० आर० 356

[5] [1973] 3 उम० नि० प० 1222=[1974] 1 एस० सी० आर० 253.

1980(5) eILR(PAT) SC 118

आकर्षित होता है। यदि इस बात को मंजूर किया जाता है तो इससे राज्य की कार्यवाही में एक प्रकार से न्यायिक हस्तक्षेप होगा और यह बात उस स्थिति के सिवाय बहुत ही खतरनाक होगी जहां इस देश के जनजीवन, स्वतन्त्रता और सुरक्षा को खतरा हो और उसके निर्धन लोग परेशानी में होंगे या स्वयं राष्ट्र के मूल निदेश डावांडोल स्थिति के कारण खतरे में पड़ जाएंगे यूनाइटेट स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस रोबर्ट के इस मत को सही सिद्ध करना निश्चित रूप से गलत होगा जो उन्होंने निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है। (स्मिथ बनाम आलराइट देखिए)—

> "मेरी चिन्ता का कारण यह है कि प्रस्तुत विनिश्चय, जो लगभग नौ वर्ष पहले घोषित न्यायनिर्णयनों को उलटता है, इस अधिकरण के विनिर्णयों को उसी वर्ग में लाता है जैसे कि निर्बन्धित रेल-रोड टिकट, जो आज के दिन और ट्रेन के लिए ही केवल वैध होता है......। ऐसे युग को, शंकास्पद और भ्रम वाला कहा गया है, जिसमें विचारों और प्रयोजन के स्थायित्व की बहुत ही आवश्यकता है। यदि यही न्यायालय, जिससे न्यायनिर्णयन में सतत रूप से स्थायित्व देखने की अपेक्षा की गई है और जिसे राय के अस्थायी दौर में भी संतुलन बनाए रखना है, हमारे संस्थानों के स्थायित्व के बारे में जनता के मस्तिष्क में नवीन शंकाएं और भ्रम पैदा करने वाला बन जाता है तो यह बात खेदजनक है।"[1]

6. इस बात को स्मरण में रखना आवश्यक है कि पूर्ववर्ती विनिर्णयों की निरुत्तर घातक त्रुटियां निर्णय हो जाने के पश्चात् पुनः उठाई नहीं जा सकती चूंकि कोई भी विनिश्चय अपनी स्वयं की प्रामाणिकता इसलिए केवल नहीं खो देता है क्योंकि उसमें गलत बहस की गई थी और अपर्याप्त रूप से विचार किया गया था तथा भ्रामक तर्क दिए गए थे।[2] केशवानन्द भारती के मामले[3] में, इन आरोपों में से कोई भी आरोप नहीं लगाया जा सकता। इन कारणों से हम इस स्पष्ट उपधारणा के आधार पर कि अनुच्छेद 31क वैध है, काउन्सेल की दलीलों पर विचार करेंगे। अनुच्छेद 31क का क्षेत्र व्यापक है तथा वह निस्संदेह रूप से भूमि की अधिकतम सीमा से सम्बन्धित विधान को परिवेष्ठित करता है। बहुत वर्ष पहले रणजीत बनाम राज्य[4] के मामले में

---

[1] [1944] 321 यू० एस० 649.

[2] सामंड ज्यूरिसप्रूडेंस पृष्ठ 215, 11 वां संस्करण.

[3] [1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1.

[4] (1965) 1 एस० सी० आर० 32.

न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह की अध्यक्षता वाली संविधान न्यायपीठ ने अनुच्छेद 31क के विस्तृत क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित किया था, अनुच्छेद 31क के मुकाबले कृषि सुधार पर इस न्यायालय के पूर्वोदाहरणों को निर्दिष्ट किया था और यह निष्कर्ष निकाला था कि भूमि का समान वितरण, जोत की अधिकतम सीमा के आरोपण द्वारा स्वामित्व के एकाधिकार का उन्मूलन और विभिन्न योजना और नीतियों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पुनर्नियोजन अनुच्छेद 31क की परिधि के अन्तर्गत आते हैं। हम उस निर्णय के एक भाग को यहां उद्धृत कर सकते हैं, जो इस प्रकार है—

> "आज की ग्रामीण विकास की स्कीम में न केवल भूमि का समान वितरण ही परिकल्पित है जिससे कि समाज में कोई असम्यक् असन्तुलन न हो, जिसके परिणामस्वरूप एक ओर भूमिहीन का वर्ग पैदा हो और दूसरी ओर कुछ लोगों के हाथ में भूमि का केन्द्रीयकरण हो। किन्तु स्कीम में आर्थिक स्तर में वृद्धि करना और ग्रामीण स्वास्थ्य और सामाजिक दशा में सुधार करना भी परिकल्पित है। सामान्य जनता, या अस्पतालों, स्कूलों, खाद के गड्डों या चरागाहों आदि के उपयोग के लिए या ग्राम पंचायत को भूमियां समनुदेशित करने के लिए उपबन्धों को, जो ग्रामीण जनता के फायदे के लिए प्रयोग में आते हैं, जोतों और बंजर भूमियों के पुनर्वितरण का एक आवश्यक भाग माना जाना चाहिए और इन उपबन्धों के बारे में स्पष्ट रूप से कोई आक्षेप नहीं किया गया है। यदि कृषि सुधार को सफल बनाना है तो भूमिहीनों को भूमियों का केवल वितरण ही पर्याप्त नहीं है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था और दशा में सुधार के लिए एक उचित योजना आवश्यक है और ग्राम पंचायत जैसा एक निकाय भूमियों के छोटे टुकड़ों के व्यक्तिगत स्वामियों की बजाय ग्राम कल्याण की अभिवृद्धि करने के लिए एक बहुत ही अच्छा निकाय है। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत भाग 3 के प्रयोजनों के लिए एक अच्छा प्राधिकरण है जैसा कि हमारे समक्ष स्वीकार किया गया है और इस स्वरूप के कारण उसे अनुच्छेद 31क का संरक्षण है यद्यपि शामलात देह का लेना अर्जन की कोटि में भी आता है.........कृषि शिल्पियों (जैसे ग्रामीण बढ़ई, ग्रामीण लोहार, ग्रामीण चर्मकार, नाल लगाने वाला, पहिया बनाने वाला, नाई, धोबी आदि) के निकाय का गठन करना ग्रामीण योजना का एक भाग है और उसे कृषि सुधार की स्कीम में सम्मिलित किया जा सकता है। यह कहना बहुत साधारण

बात है कि भारत गांवों में बसा है तथा गांव को स्वावलम्बी बनाने की स्कीम को बृहत सुधार की स्कीम के सिवाय और कुछ नहीं माना जा सकता जिसमें जोतों का समेकन, भूमियों की अधिकतम सीमा का नियत करना और फालतू भूमि का वितरण तथा खाली और बंजर भूमियों का उपयोग करना अनुध्यात है।"

इस मत को ग्वालियर रेयन के मामले[1] में संविधान न्यायपीठ के पश्चात्वर्ती निर्णय द्वारा पुनः प्रवृत्त किया गया है और अनुच्छेद 31क के मुकाबले कृषि सुधार के वेग संबंधी धारणा के समर्थन के लिए बलपूर्वक मत व्यक्त किया गया है। इसलिए यह प्रतिपादना अकाट्य है कि अनुच्छेद 31क "जोत की अधिकतम सीमा सम्बन्धी विधान" (अनुच्छेद 14, 19 और 31 से सुसज्जित) से संबंधित सब आक्षेपों को नामंजूर करता है।

7. विधान का स्वीकृत उद्देश्य खेतीहर लोगों को राष्ट्र का एक बहुत बड़ा ग्रामीण स्रोत बनने के लिए पूरा अवसर प्रदान करने के प्रति विशेष निर्देश से वितरणात्मक न्याय प्रदान करना और ग्रामीण विकास के लिए अधिकतम फालतू भूमि उपलब्ध करवाना है। किस प्रकार से फालतू भूमि बढ़ाई जा सकती है? ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उपयोगिता और लोगों के रहन-सहन के अनुरूप जोतों के स्वामित्व पर अधिकतम सीमा अधिरोपित करके। इसलिए जोत की अधिकतम सीमा और फालतू भूमि का अभ्यर्पण व्यापक केन्द्रीय धारणाएं हैं। कामकाजी यूनिट वास्तविक कुटुम्ब है जिसके प्रति निर्देश से जोत की अधिकतम विधिक सीमा नियत की गई है। इसलिए "कुटुम्ब" की लचीली धारणा भी विधायी परिभाषा का केन्द्रीय उद्देश्य हो जाता है। भारतीय समाज को बनाने वाली विभिन्न जातियों में कुटुम्ब की यूनिटों की विभिन्नता तथा मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में विधान के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विचाराधीन कानून में कुछ परिवर्तनों और विशेष स्थितियों के लिए उपबन्ध सहित "कुटुम्ब" की एक वर्धनक्षम और वास्तविक परिभाषा दी गई है। कानून को कार्यान्वित करने के लिए शासनतन्त्र भी स्थापित किया गया है और उसे अपीलों सहित न्यायनिर्णयन की शक्ति दी गई है। किसी व्यक्तिगत भेदभाव के बिना स्कीम के अनुसार प्रतिकर तब भी दिया जाना चाहिए जब फालतू भूमि ली जाती है तथा ऐसे प्रतिकर के अवधारण और संदाय के लिए एक पूर्ण अध्याय बनाया गया है। शायद फालतू रूप में प्राप्त की गई भूमियों का व्ययन विधायी परियोजना का चरमबिन्दु

---

[1] [1973] 3 उम० नि० प० 1222=[1974] 1 एस० सी० आर० 253.

1980(5) eILR(PAT) SC 118

है और इसलिए अध्याय 4 फालतू भूमि के व्ययन और निपटान की रीति नियत करता है। इस प्रकार अध्याय 1 में परिभाषा सम्बन्धी उपबन्ध है जिसमें छूट के लिए आनुषंगिक उपबन्ध सहित "अधिकतम सीमा" का अधिरोपण भी है। अध्याय 2 और 3 में कानून के प्रवर्तन के लिए न्यायिक तन्त्र तथा कानून के साथ कपट और गड़बड़ी करने को निवारित करने के लिए तथा प्रतिकर के निर्धारण और उसके संदाय के लिए तथा इसके समान ही अन्य उपबन्ध अधिनियमित किए गए हैं। विभिन्न बातों से सम्बन्धित एक प्रकीर्ण अध्याय है जिसमें अपराध और शास्तियां, सुनवाई का ढंग और अपीली शक्तियां तथा उसके समान बातें सम्मिलित हैं। अनिवार्य रूप से ऐसा प्रगतिशील विधान भूमि वाले अमीरों की नीति का प्रबल विरोधी है तथा धनवान व्यक्तियों की विनियोजक प्रवृत्ति तथा हरित क्रान्ति के भी प्रतिकूल है। इसलिए ऐसे भूधारकों ने, जो अधिनियम के उपबन्धों द्वारा प्रभावित हुए हैं, उपबन्धों की शक्तियों को चुनौती दी है और यदि उनका आधार अच्छा है तो उन्हें अवश्य ही सफल होना चाहिए। चूंकि विधानमण्डल को संविधान द्वारा प्रदत्त सीमा तक निर्बाध शक्तियां हैं इसलिए चुनौती को सांविधानिक त्रुटियों पर आधारित होना चाहिए और वास्तव में उन पर आधारित किया गया है और यदि ये आधार सुदृढ़ हैं तो अधिनियम को अवश्य ही निरस्त किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यक्ति इस बात को पूछ सकता है कि क्या कृषि सुधार ने, जिसे बहुत ही बलपूर्वक घोषित किया गया है, गम्भीरता से वह स्थान ग्रहण कर लिया है या अभी भी अधर में लटका हुआ है ? किसी भी प्रकार से न्यायालय केवल निर्णय दे सकता है और कार्यपालिका को उसे कार्यान्वित करना चाहिए।

8. अब हम उन विवाद्यकों पर विचार करेंगे जो विद्वान कान्सेल के अनुसार विधान के लिए घातक हैं तथा सम्यक् अनुक्रम में उनकी संवीक्षा करेंगे।

9. मामले की पृष्ठभूमि में बहुत ही बारीक बातें उठाई गई हैं जो कुछ वास्तविकता या काल्पनिक, पक्षपात, असमानता, विधायी निरंकुशता या अन्याय की भावना पर आधारित हैं। सामान्य तौर से मत व्यक्त करते हुए अभिलेख को ठीक करने की दृष्टि से अन्याय सामाजिक दर्शनशास्त्र, विद्यमान आर्थिक दृष्टिकोण और सर्वोत्तम रूप से सांविधानिक मुद्दों द्वारा सशर्त है जो न्यायालय और समाज को आबद्ध करता है।

10. भारतीय संविधान एक आधारभूत दस्तावेज है और सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवर्तन के लिए एक अधिकारपत्र है जो उद्देश्यात्मक

संकल्प में उल्लिखित उद्देश्यों से प्रेरित हैं और जो समान समाज के बारे में राष्ट्र को आबद्ध करता है, हाल ही के संशोधन द्वारा पुरःस्थापित हमारे गणतन्त्र के लिए विशेषणात्मक समाजवादी उद्देश्य है। इस संशोधन को संसद द्वारा कायम रखा गया है और इसे विभिन्न रूप से गठित किया गया है तथा 42वें संशोधन द्वारा प्रवर्तित किया गया है। यह पृष्ठभूमि यह दर्शाती है कि कृषि विधान को, जो समानता की चिकित्सा के रूप में है, प्रत्येक वैयक्तिक क्षति के लिए अत्यन्त सावधानीपूर्वक नहीं देखा जाना चाहिए किन्तु उसे मूलभूत असमानताओं को उत्सादित करने के लिए, मूलभूत सामाजिक ऋजुता के विफल होने तथा खेद पहुंचाने वाली भेदपूर्ण नीति के विफल होने के व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में निहित हितों के प्रति विरोध अन्तर्वलित है। ऐसे व्यक्तियों को कम से कम हानि पहुँचाने की सही कला मानवीय देन नहीं है। विधि द्वारा परीक्षित सामाजिक उपाय व्यक्तिगत क्षति को दूर नहीं करता है किन्तु समाज के कल्याण को अग्रसर करता है। जब भूस्वामी खोई हुई भूमि को प्राप्त करने के लिए यहां वहां भटकते हैं तब न्यायालय अपने निर्वचन की भूमिका में न तो दार्शनिक हो सकता है और न ही भावुक हो सकता है हम इन दलीलों की अनुच्छेद 31ख, ग और घ का निर्देश किए बिना इस दृष्टिकोण मे परीक्षा करेंगे। न्यायाधीश कार्डोजों ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है[1]—

> "विधि और विधि का अनुपालन ऐसे तथ्य हैं जिनकी हमारे जीवन के अनुभव में सब व्यक्तियों द्वारा पुष्टि की जाती है। यदि परिभाषा का परिणाम केवल उन्हें उदारात्मक बनाना है तो वह परिभाषा के लिए अनुपयोगी है। हमें उसे तब तक इतना व्यापक बनाना चाहिए जब तक कि वह वास्तविकताओं का उत्तर देने के लिए पर्याप्त रूप से समर्थ न हो।"

11. श्री मृदुल ने बलपूर्वक तीन तर्क दिए हैं। अनुच्छेद 31क(1)(ii) बहस का प्रमुख मुद्दा था जिस पर काउन्सेल ने उचित रूप से पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर बल नहीं दिया है। वह अनुच्छेद 21 और सम्पत्ति के अधिकार से बिल्कुल ही सम्बन्धित था और उससे वंचित हो जाने को अयुक्तियुक्त प्रक्रिया कहा गया था जो किसी प्रकार से अनुच्छेद 21 की परिधि में आता है।

12. औचित्यपूर्ण व्यक्तित्व वैयक्तिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित था तथा किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को कारित हानि उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर कुठाराघात था। इसलिए भूमि सुधार विधि, यदि अयुक्तयुक्त है तो अनुच्छेद 31

[1] कार्डोजो कृत पुस्तक or 'सेलेक्टेड राईटिंग्स' पृष्ठ 159.

का अतिक्रमण करती है जैसा कि मेनका गांधी बनाम भारत संघ[1] के मामले में व्यापक रूप से उसका अर्थान्वयन किया गया है। अनुच्छेद 21 में वैयक्तिक स्वतन्त्रता और अनुच्छेद 31 और 19 में स्वामित्व की हैसियत के बीच अन्तर स्पष्ट है। राजनैतिक या न्यायिक सिद्धान्त के अनुसार उसके लिए दार्शनिक न्यायोचितता या परिवर्तनशील वास्तविकता चाहे जो भी हो। कोई भी गरीब व्यक्ति स्वतन्त्र विचलन करने के लिए मुक्त नहीं भी हो सकता है तथा उसे इस बात के लिए कुछ खोना नहीं होता है। किन्तु हमारा सम्बन्ध एक अन्य सांविधानिक न्यायशास्त्र से है। यद्यपि काउन्सेल ने अनुच्छेद 21 का अवलम्ब लिया है, और उसने अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 31-क का उल्लेख नहीं किया है। **मेनका गांधी के मामले**[1] का उदाहरण देकर के केवल उन व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है जिनकी सम्पत्ति वैयक्तिक स्वतन्त्रता को हानि पहुंचाकर के ली गई है। जब राज्य ने केवल सम्पत्ति ली हो और अन्य सब तर्क असफल रहे हों तब केवल मेनका गांधी के मामले का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता।

13. अन्तिम प्रश्न जिसमें कुछ नैतिक पुट था वह यह था कि भूसम्पत्ति के अन्तरण, यद्यपि अधिनियम में विनिर्दिष्ट तारीखों के पश्चात् निष्पादित किए गए थे, अधिनियम द्वारा युक्तियुक्त रूप से अविधिमान्य कर दिए गए थे जब कि अन्तरक की ओर से अधिकतम जोत सीमा विधि के लिए कोई आपराधिक मनःस्थिति नहीं थी तथा यह बात मनमाने रूप में अनुच्छेद 19(1)(च) और अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी थी। स्पष्टतया अत्यन्त सावधानी के बारे में भी तर्क दिया गया था जो अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है। मुख्य नीति के सहायक रूप में विधानमण्डल उन क्रियाकलापों को निवारित करने के लिए सही था जो कानूनी प्रयोजन को विफल करता है तथा ऐसी कार्यवाहियों को अविधिमान्य करने के लिए उपबन्ध करना भी था। जब अन्तरण अविधिमान्य हो और वे इस प्रयोजन के लिए नियत की गई कानूनी तारीख के पश्चात् किए गए हों तो ऐसे प्रतिषेध में एक अर्थ होता है अन्यथा सब भूमियां अन्तरित हो गई होतीं तथा बहुत कम भूमि फालतू रूप में शेष रह गई होती। हम अधिनियम की धारा 5(6) का अध्ययन करेंगे जिसे अत्यधिक भूमि के सम्मिलित किए जाने के लिए या अन्यथा विभेदकारी होने के कारण अवैध कहा गया है। तर्क का अनुसरण करना कठिन है तथा भूमि सुधार विधि के लिए बहुत ही आदर्श है और वह तभी स्पष्ट हो सकता है जब उपबन्ध का अर्थान्वयन किया जाए। धारा 5(6) इस प्रकार है—

---

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 1 एस० सी० सी० 248.

*"किसी भूधृतिधारी को लागू होने वाले अधिकतम सीमा क्षेत्र का अवधारण करने में, तारीख 24 जनवरी, 1971 के पश्चात् किए गए भूमि के किसी भी अन्तरण को, जो अन्तरण के सिवाय इस अधिनियम के अधीन फालतू भूमि घोषित की गई होती, छोड़ दिया जाएगा और उसके हिसाब में नहीं लिया जाएगा :—

परन्तु इस उपधारा की कोई भी बात निम्नलिखित को लागू होगी—

(क) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी भी व्यक्ति (सरकार सहित) के पक्ष में अन्तरण,

(ख) सदभाव में तथा पर्याप्त प्रतिफल के लिए और अप्रतिसंहरणीय लिखित के अधीन, जो बेनामी संव्यवहार न हो, या भूधृतिधारी या उसके कुटुम्ब के अन्य सदस्यों के तुरन्त या आस्थगित फायदे के लिए विहित प्राधिकारी के समाधानप्रद रूप में साबित किया गया अन्तरण।"

14. यहां पर कोई पूर्ण रोक नहीं है किन्तु केवल कतिपय कुटिल समनुदेशनों आदि को अविधिमान्य किया गया है। जब काउन्सेल यह तर्क करते हैं कि सद्भाव और पर्याप्त प्रतिफल के लिए किए गए अन्तरण को असांविधानिक रूप से छूट दी गई है तो ऐसा तर्क झीना-तानाबाना है जो

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"In determining the ceiling area applicable to a tenure-holder, any transfer of land made after the twenty-fourth day of January, 1971, which but for the transfer would have been declared surplus land under this Act, shall be ignored and not taken into account :

Provided that nothing in this sub-section shall apply to—

(a) a transfer in favour of any person (including Government) referred to in sub-section (2);

(b) a transfer proved to the satisfaction of the prescribed authority to be in good faith and for adequate consideration and under an irrevocable instrument not being a benami transaction or for immediate or deferred benefit of the tenure-holder or other members of the family."

1980(5) eILR(PAT) SC 118

न्यायिक कसौटी के छूने मात्र से टूट जाता है । मुख्य दलील यह है कि "पर्याप्त प्रतिफल" एक मनमानी कसौटी है । हम इस दलील को और कोई चर्चा किए बिना अस्वीकार करते हैं । दलील का दूसरा पहलू यह है कि धारा 5(6) कतिपय अन्तरणों की उपेक्षा करने के लिए प्राधिकारी को निदेश देती है और वह ऐसे अन्तरणों को शून्य नहीं बनाती है । काउन्सेल द्वारा आगे बलपूर्वक यह दलील दी गई है कि उपबन्ध अनुच्छेद 31-क द्वितीय परन्तुक का अतिक्रमण करता है । इस दलील को स्वीकार करना बहुत ही कठिन है और हम उसे निरर्थक रूप में अस्वीकार करते हैं । धारा 5(6) के उपबन्ध के परन्तुक की दृष्टि से पढ़े जाने पर उचित और विधिमान्य हैं ।

15. काउन्सेल ने अपने स्वयं के शब्दों में आगे यह दलील दी है कि "आक्षेपित उपबन्ध युक्तियुक्त प्रक्रिया स्थापित नहीं करते हैं" क्योंकि—

> " 'सद्भाव' पद बहुत व्यापक है और उसकी परिधि में ऐसी स्थितियां भी सम्मिलित हैं जो न केवल बहुत ही भिन्न हैं किन्तु जिनका अधिकतम सीमा विधि के उद्देश्यों और प्रयोजन से कोई वैध सम्बन्ध न भी हो ।......."

हम इससे प्रभावित नहीं हुए हैं और हमें उसमें कोई सार प्रतीत नहीं होता है ।

16. नैतिकता या सांविधानिकता का भी कोई प्रश्न नहीं है यद्यपि खण्ड को कुछ व्यापक रूप से बनाया गया हो । इसके प्रतिकूल यह एक विधायी त्रुटि है जिससे कि बिना किसी संरक्षण के फालतू भूमि के संचय को समुचित निवारकों और अधिनियमित रोकों द्वारा आरक्षित नहीं किया गया है । यह एक विधिक शासनतन्त्र है न कि नैतिकता का त्याग । वास्तव में, विधि का उच्च आदर्श या सामाजिक वैधता अन्तरण विहित करने के लिए एक चतुर विधानमण्डल की अपेक्षा करती है जिससे कि संव्यवहारों की अधिकता के कारण फालतू भूमि का एक पूल तैयार हो जाए । इससे व्यक्तिगत कठिनाई हो सकती है और कुछ गलत उदाहरण भी हो सकते हैं । किन्तु प्रत्येक बड़े काम के लिए मानवीय त्याग की अपेक्षा होती है । आहत व्यक्तियों को बहुत ही कम अनुतोष प्राप्त होता है, किन्तु फिर भी यदि अधिकांश भूस्वामी कोई विध्वंसकारी कार्य नहीं करते हैं या बनावटी अन्तरणों की सहायता नहीं लेते हैं तो वह एक आवश्यक उपाय होता है । फिर भी यह रोक किसी मान्यता प्राप्त तारीख पर ही केवल प्रवृत्त हुई है न कि मनमाने तौर पर किसी भूतलक्षी तारीख से ।

17. हम ऐसी कोई बात ढूढ नहीं सके हैं जो नैतिक रूप से गलत है या ऐसी स्थिति में सांविधानिक रूप से अविधिमान्य है। अनुच्छेद 19(1)(छ) आत्यंतिक रूप से प्रवृत्त नहीं है और अनुच्छेद 19(6) के अधीन वह युक्ति-युक्त निर्बन्धनों के अध्यधीन है जैसा कि धारा 5(6) में अन्तर्विष्ट है। हमारे विचार से उन तीनों दलीलों में कोई गुणागुण नहीं है जो श्री मृदुल द्वारा दी गई हैं।

18. गुणागुण के आधार पर भी अन्तरणों की सही रूप से उपेक्षा की गई है। विक्रेताओं को, जो कि नाती हैं, पर्याप्त प्रतिफल के लिए सद्भावी अन्तरिती नहीं माना गया है तथा तथ्य के निष्कर्ष एक समान हैं। हम शिकायत के आधारों को उलटते हैं चूंकि वे कायम रहने योग्य नहीं हैं। संक्षेप में अनुच्छेद 31क का अवलम्ब लिए बिना श्री मृदुल की दलीलों को गुणता न होने के कारण नामंजूर किया जा सकता है।

19. अब हम अन्य काउन्सेल की संक्षिप्त दलीलों पर विचार करेंगे। उनमें से कुछ में न्यायालय के गम्भीर विचारार्थ कुछ गुणागुण हैं और ऐसी स्थिति में भी जहां न्यायिक प्रक्रिया से कोई प्रयत्क्ष अनुतोष न मिलता हो, वहां विषमताओं को दूर करने के लिए राज्य की कार्यवाही का वास्तविक कठिनाइयों की दृष्टि से अवलम्ब लिया जा सकता है।

20. 1979 के रिट पिटीशन सं० 228 में और 1978 के विशेष इजाजत पिटीशन सं० 2599 में हाजिर होने वाले श्री वेद व्यास ने न्याय करने के लिए और लिंग की समानता के लिए बलपूर्वक अभिवचन किया है क्योंकि उनके अनुसार अधिनियम को कुटुम्ब यूनिट की परिभाषा के प्रतिकूल पुरुष प्रधान दृष्टिकोण से बनाया गया है तथा भूमि जोत की अधिकतम सीमा आबंटित की गई है इसलिए असांविधानिक भेदभाव हुआ है। वास्तव में उनका पक्षकथन कानून के महिला विरोधी पक्ष पर प्रकाश डालता है। दलील बहुत ही साधारण है। यह अनुमान अनिवार्य है किन्तु अविधिमान्यकरण फिर भी नहीं होता है यदि अनुच्छेद 31क पर अनुच्छेद 14 की दृष्टि से बल नहीं दिया जाता है।

21. हम उद्देश्यों पर विचार करेंगे और सांविधानिक परिप्रेक्ष्य में उनके गुणागुण की परीक्षा करेंगे। इस व्यापक सामान्यीकरण में कुछ बल हो सकता है कि भारतीय महिलाओं के विगतकाल में वैभव और समता की स्थिति और भारतीय इतिहास में वीरांगनाओं के पराक्रम के बारे में हमारी

बड़ी बड़ी बातें कहे जाने के बावजूद, संस्कृति न केवल सामंतवाद से किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भी विकृत हुई है। वास्तव में, महात्मा गांधी द्वारा चलाया गया स्वतन्त्रता आन्दोलन, आध्यात्मिक नेताओं जैसे स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रेरित समाज सुधार की कहानी और राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और महर्षि कर्वे जैसे महान भारतीय विभूतियों की प्रेरणा से तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में हजारों महिलाओं के योगदान से, जिन्होंने अपनी नियंत्रित हैसियत को छोड़ दिया था और विदेशियों को भगाने के लिए विद्रोह में भाग लिया था तथा भारतीय स्त्रीत्व की, भारतीय पुरुष के साथ समान भागीदार की हैसियत को कायम रखा था जब कि देश ने अपने स्वरूप को कायम रखने का विनिश्चय किया था और उस निमित्त संविधान अधिनियमित किया था। हमारी विधिक संस्कृति पिछले इतिहास का भागतः एक अंग है और इसमें ऐसे भेदभाव को दूर करने के लिए उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं जिसे आयोगों ने विस्तृत रूप से जांच करके केन्द्रीय सरकार को मूल्यवान रिपोर्ट दी है। श्री वेद व्यास केवल इस सीमा तक ही इन दलीलों को देने में सही हो सकते हैं किन्तु जब हम किसी ठोस कानूनी स्थिति पर पहुंचते हैं और अधिनियम के विनिर्दिष्ट उपबन्ध पर विचार करते हैं, तब उनके तर्क उचित प्रतीत नहीं होते हैं।

22. उनकी दलील का अच्छी तरह से मूल्यांकन दो परिभाषाओं की विषयवस्तु पर और उस में अन्तर्विष्ट आशय पर विचार करने के पश्चात् किया जा सकता है। धारा 3(7) में "कुटुम्ब" की परिभाषा है जो इस प्रकार है—

> *" 'कुटुम्ब' किसी भूधृतिधारी के सम्बन्ध में स्वयं और यथास्थिति उसकी पत्नी या उसका पति (न्यायिक रूप से पृथक् पत्नी या पति से भिन्न) अवयस्क पुत्र और अवयस्क पुत्रियां (विवाहित पुत्रियों को छोड़कर) अभिप्रेत हैं।"

यह परिभाषा धारा 5(3) के संदर्भ से पढ़े बिना अपूर्ण है। इसलिए हम उस उपबन्ध को उद्धृत करते हैं जो श्री वेद व्यास की दृष्टि से महिला के साथ

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> " 'family' in relation to a tenure-holder, means himself or herself and his wife or her husband as the case may be (other than a judicially separated wife or husband), minor sons and minor daughters (other than married daughters)."

भेदभाव को व्यक्त करते हैं धारा 5(3)(क) और (ख) और स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

*धारा 5(3).—उपधारा (4), (5), (6) और (7) के अध्यधीन रहते हुए, उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए अधिकतम सीमा क्षेत्र इस प्रकार होगा—

(क) पांच से अनधिक सदस्यों वाले कुटुम्ब के भूधृतिधारी के मामले में 7.30 हेक्टर सिंचित भूमि जिसमें उसके कुटुम्ब के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि सम्मिलित है। और दो अतिरिक्त हेक्टर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो उसके द्वारा धारित भूमि सहित उसके ऐसे प्रत्येक वयस्क पुत्रों के लिए कुल दो हेक्टर से अधिक न हो जो न तो स्वयं भूधृतिधारी हैं या जो दो हेक्टर सिंचित भूमि से कम के भूमिधारी हैं,

(ख) पांच से अधिक सदस्यों वाले कुटुम्ब के भूधृतिधारी के मामले में 7.30 हेक्टर सिंचित भूमि (जिसमें उसके कुटुम्ब के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि सम्मिलित है) के अतिरिक्त पांच से अधिक सदस्यों में से प्रत्येक के लिए और उसके ऐसे

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

Sec. 5(3). Subject to the provisions of sub-section (4), (5), (6) and (7) the ceiling area for purposes of sub-section (1) shall be—

(a) in the case of tenure-holder having a family of not more than five members, 7.30 hectares of irrigated land (including land held by other members of his family) plus two additional hectares of irrigated land or such additional land which together with the land held by him aggregates to two hectares for each of his adult sons, who are either not themselves tenure holders or who hold less than two hectares of irrigated land, subject to maximum of six hectares of such additional land;

(b) in the case of a tenure-holder having family of more than five members, 7.30 hectares of irrigated land (including land held by other members of his family) besides each of the members

प्रत्येक वयस्क पुत्रों के लिए, जो स्वयं भूधृतिधारी नहीं हैं या जो दो हेक्टर सिंचित भूमि से कम भूमि धारित करते हैं, दो हेक्टर अतिरिक्त सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो ऐसे वयस्क द्वारा धारित भूमि सहित कुल दो हेक्टर से अधिक न हो और जो ऐसी अतिरिक्त भूमि के 6 हेक्टर से अधिक न हो।

स्पष्टीकरण—खण्ड (क) और खण्ड (ख) में 'वयस्क पुत्र" पद में ऐसा वयस्क पुत्र सम्मिलित है जिसकी मृत्यु हो गई है और जो अपने पीछे ऐसे जीवित अवयस्क पुत्र या अवयस्क पुत्रियां (विवाहित पुत्रियों से भिन्न) छोड़ गया है जो स्वयं भूधृतिधारी नहीं हैं या जिनके पास दो हेक्टर सिंचित भूमि से कम भूमि है।"

23. महिला विरोधी प्रवृत्ति स्पष्ट है क्योंकि कुटुम्ब की परिभाषा ही वयस्क पुत्रियों के लिए अधिकतम सीमा में कोई अतिरिक्त भूमि के जोड़ के लिए उपबन्ध किए बिना उनको अपवर्जित करना महिलाओं के बारे में प्रतिकूल रुख प्रकट करता है। वयस्क पुत्र के मामले में अधिनियम की धारा 5(3)(क) भूधृतिधारक के प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए दो हेक्टर अतिरिक्त सिंचित भूमि जोड़ने के लिए उपबन्ध करती है जहां उसके कुटुम्ब की संख्या पांच से कम हो। धारा 5(3)(ख) भूधृतिधारक के प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए दो हेक्टर सिंचित

---

exceeding five and for such of his adult sons who are not themselves tenure-holders of who hold less than two hectares or irrigated land, two additional hectares of irrigated land, or such additional land which together with the eand held by such adult son aggregates to two hectares, subject to a maximum of six hectares of such additional land.

Explanation : The expression 'adult son' in clause (a) and (b) includes an adult son who is dead and his surviving behind him minor sons or minor daughters (other than married daughters) who are not themselves tenure-holders or who hold land less than two hectares or irrigated land."

1980(5) eILR(PAT) SC 118

अतिरिक्त भूमि के लिए उपबन्ध करती है जहां कुटुम्ब की संख्या 5 के अधिक है। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इस अतिरिक्त भूमि को जोड़ा जाना इस तथ्य के कारण है कि वयस्क पुत्र है यद्यपि वे भूधृतिधारक न हों या दो हेक्टर भूमि से कम भूमि धारित करते हों या कभी भी भूमि धारित न करते हों। कुल सीमा में जोड़े जाने का यह लाभ है कि भूधृतिधारक वयस्क पुत्रों की दशा में अतिरिक्त भूमि धारित कर सकता है किन्तु वयस्क पुत्रियों की दशा में उसे अतिरिक्त भूमि धारित करने से इनकार किया गया है यद्यपि वे अविवाहित हों और कुटुम्ब पर आश्रित हों और इसके लिए विवाहित पुत्र की हैसियत विवाहित पुत्री से भिन्न है। एक आश्रित अविवाहित पुत्री को अधिकार-विहीन रखने में क्या न्यायोचितता है। यह उपधारणा करते हुए और न मानते हुए भी श्री व्यास ने आगे यह दलील दी है कि बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 को ध्यान में रखते हुए और इन दिनों कुटुम्ब में अविवाहित वयस्क पुत्रियों की संख्या में वृद्धि को देखते हुए भेदभाव न केवल महत्वपूर्ण है किन्तु वास्तविक भी है क्योंकि किसी भी अवयस्क पुत्री का अब विवाह नहीं हो सकता।

24. इसी प्रकार का एक अन्य स्पष्ट उपबन्ध भूधृति धारक की परिभाषा है। जोत की अधिकतम सीमा भूधृतिधारकों के प्रति निर्देश से तय की जाती है।

25. हमें संदेह है कि क्या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों या महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित आयोग ने अधिकांशतः भूमि सुधार विधियों में लिंग भेद के इस पहलू पर विचार किया है या नहीं। किन्तु निस्संदेह राज्य को विशेषतया महिलाओं के प्रति उदार होना चाहिए। वयस्क कमजोर वर्ग को भूमि सुधार से प्रेरित विकासशील विधानों द्वारा हानि नहीं पहुंचनी चाहिए। इस आलोचना का समाज के सिद्धान्तों और विधायकों की प्रवृत्ति से सम्बन्ध हो सकता है किन्तु हमारा सम्बन्ध उपबन्ध की सांविधानिकता से है। इस आणविक युग, कुटुम्ब और समान मानवीय अधिकारों के युग में इस प्रकार का भेदभाव अदूरदर्शी है और हमें पिछले अंधाकरमय युग की ओर ले जाता है। महिलाओं को उनके इनकार न किए जाने वाले अधिकार से वंचित करने के उद्देश्य से भारतीय जीवन पद्धति कहकर ऐसे अधिकार पर आवरण नहीं डाला जा सकता। अनुच्छेद 14 और 15 तथा संविधान की उद्देशिका की मानवीय भावना स्त्रीत्व के सांपत्तिक व्यक्तित्व की वस्तुतः इनकारी के विरुद्ध है। किन्तु इस विधिक भावना और न्यायिक मूल्य को अनियंत्रित नहीं छोड़ा जाना चाहिए जिससे कि वे उपबन्ध निरर्थक न हो जिनके द्वारा स्त्री

और पुरुष के बीच भेदभाव नहीं किया गया है किन्तु वे केवल ऐसी स्कीम बनाते हैं जहां जीवन की वास्तविकता को विधान के द्वारा वास्तविक रूप दिया जाता है। ऐसी स्कीम से स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में न्याय पर कुछ प्रभाव पड़ सकता है किन्तु उससे कमजोर वर्ग या स्त्री के अधिकार कम नहीं हो जाते हैं। यदि भूमि की जोत और उसकी अधिकतम सीमा का उद्देश्य महिलाओं के स्वामित्व को प्रभावित किए बिना अधिकतम फालतू भूमि उपलब्ध करवाना है तो इस उपाय को समाप्त करने के लिए कोई भी दलील स्वीकार नहीं की जा सकती और वह भी लिंग के भेदभाव के आधार का अवलम्ब लेकर के यह कार्य समाज के उद्देश्य पर कुठाराघात करने के साधन के रूप में होगा। किसी व्यक्ति की सम्पत्ति से अधिक किसी स्त्री की सम्पत्ति नहीं ली जानी चाहिए।

26. धारा 5(3) पुत्रियों या पत्नियों की हास्यास्पद स्थिति बनाती है। वह कृषि जीवन की ग्रामीण वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए अत्यधिक जोतों को प्रतिषिद्ध करती है। "कुटुम्ब" को परिभाषित किया गया है क्योंकि उसे जोत की भूमि के लिए यूनिट के रूप में माना गया है। यह सामाजिक जीवन के विस्तार का तथ्य है जिसे समाप्त नहीं किया जा सकता। यह स्वामित्व की सीमाओं को तय करने के लिए स्कीम को कार्यान्वित करने हेतु सामाजिक तंत्र का एक साधन है। धारा 5(3) किसी वयस्क पुत्र को कोई सम्पत्ति प्रदत्त नहीं करती है और न ही किसी वयस्क पुत्री से कोई सम्पत्ति समपहृत करती है। वह उपबन्ध केवल ऐसे भूधृतिधारक को रियायत देता है जिसके सम्पत्ति विहीन वयस्क पुत्र हैं और इसलिए वह भूधृतिधारक को ऐसे प्रत्येक पुत्र के लिए दो हेक्टर अधिक भूमि रखना अनुज्ञात करती है। सम्पत्ति विहीन पुत्र को इस आधार पर भूमि का एक भाग भी प्राप्त करने का अधिकार नहीं है किन्तु पिता को इन अतिरिक्त व्यक्तियों का पेट भरने के लिए अपने स्वयं के पास अधिक भूमि रखने के लिए अनुज्ञात किया गया है। यदि किसी अविवाहित पुत्री के पास अपनी स्वयं की भूमि है तो यह विधान उसे समान स्थिति वाले अविवाहित पुत्र से अधिक वंचित नहीं करता है। दोनों को ही भूधृतिधारकों के रूप में माना जाता है। किसी अविवाहित पुरुष के मुकाबले किसी अविवाहित स्त्री की यह व्यथा हो सकती है कि पिता को केवल अविवाहित वयस्क पुत्र होने की दशा में दो अतिरिक्त हेक्टर भूमि धारित करने के लिए अनुज्ञात किया गया है। न तो पुत्री को और न ही पुत्र को इसके परिणामस्वरूप कोई भूमि प्राप्त होती है तथा सामान्य माता पिता समान दृष्टि से अपनी अविवाहित पुत्री की भी देखभाल करेंगे। विधिक क्षति केवल

तभी हो सकती है यदि पुत्री की सम्पत्ति ले ली जाती है और पुत्र की सम्पत्ति धारित की जाती है या पुत्री को कोई भी हिस्सा प्राप्त नहीं होता जबकि पुत्र को कुछ हिस्सा प्राप्त होता हो। विधान द्वारा ऐसी कोई बात नहीं की गई है। इसलिए कोई ठोस भेदभाव नहीं बतलाया जा सकता। यह हो सकता है कि विधानमण्डल ने किसी अविवाहित वयस्क पुत्री के अस्तित्व के आधार पर किसी भूधृतिधारक को अपने लिए अतिरिक्त दो हेक्टर भूमि रखना अनुज्ञात किया हो। इसके लिए ऐसा करने हेतु ग्रामीण क्षेत्र की वास्तविकताओं के आधार हो सकते हैं। न्यायालय सहानुभूति प्रकट कर सकती है किन्तु ऐसा कोई आदेश नहीं दे सकती कि भूधृतिधारक केवल इसलिए अधिक भूमि रख सकता है क्योंकि उसकी वयस्क अविवाहित पुत्रियां हैं। ऐसा करना अनुज्ञेय प्रक्रिया से परे न्यायिक विधान होगा।

27. यही दूरदर्शी विश्लेषण पत्नी से सम्बन्धित उपबन्ध को संरक्षण प्रदान करता है। यह बात सही है कि धारा 3(17) पत्नी का स्वामी होते हुए भी पति को भूधृतिधारक बनाती है। जहां तक कि भूमि स्वीकृत सीमा के भीतर है वहां तक वह स्वामित्व या उपभोग को प्रभावित किए बिना यथापूर्व कायम रहती है। किन्तु जहां वह अधिक है वहां पत्नी की भूमि को फालतू भूमि के रूप में लिए जाने पर पत्नी को अध्याय 3 के अधीन प्रतिकर दिया जाता है। भूमि के चयन की दशा में भी फालतू भूमि घोषित करने में धारा 12(ए) में विधि द्वारा पत्नी को संरक्षण प्रदान करने के लिए अत्यधिक सावधानी बरती गई है। पति के भूधृतिधारक होने पर भी जब पत्नी भूस्वामी होती है तब भी वह प्रक्रिया सम्बन्धी संव्यवहारों के सरलीकरण के लिए एक विधायी युक्ति है। यह सब कहने और किए जाने पर भी हमारे गांव में विवाहित स्त्री को अपने पति की सेवाओं की आवश्यकता होती है और वे उन्हीं के माध्यम से सार्वजनिक स्थानों में बातें करती हैं सिवाय उस दशा के जहां कि उन्हें गुप्त मतदान करने में अपने स्वतंत्र राजनैतिक पसन्द को अभिव्यक्त करना होता है। हममें से कुछ व्यक्ति इस विधि में महिला के पक्षपाती दृष्टिकोण से संतुष्ट नहीं भी हो सकते हैं किन्तु यह अभिनिर्धारित करना कठिन है कि स्त्रियों के अधिकारों को असमान रूप से माना जाता है और इसलिए लिंग के आधार पर समान हैसियत प्रदान करने की लड़ाई अन्यत्र स्थान पर लड़ी जानी चाहिए। आदर्श मत व्यक्त करने पर विधिक पद्धति द्वारा, जो कि संविधान की उद्देशिका और अनुच्छेद 14 की भावना के अनुरूप है, भारतीय महिला को पुरुष के समान दर्जे, सम्पत्ति और व्यक्तित्व के लिये हकदार माना जाना चाहिए। यह बात गलत है कि भूमि सुधार विधियां महिला को उसकी

1980(5) eILR(PAT) SC 118

सम्पत्ति से वंचित कर देती हैं। यदि ऐसा उपबन्ध है तो उसे असांविधानिक घोषित किया जाना चाहिए क्योंकि हम यह आशा नहीं कर सकते हैं कि घर लड़कियों के लिये कारागार है और महिलाओं के लिये एक कार्यशाला। किन्तु ऐसी स्थिति नहीं है।

28. उचित पूर्वक यह कहा जा सकता है कि विधानमण्डल को वास्तविकताओं के आधार पर कार्य करना चाहिए न कि कोरे आदर्शों के आधार पर जिससे कि असफलता हाथ लगे। बड़े भूधारकों को भी महिलाओं के साथ सामूहिक रूप में भेदभाव करने के लिये भूमि वितरण सम्बन्धी सामाजिक नीति को विफल करने के लिये अनुज्ञात नहीं किया जा सकता। श्री वेद व्यास की इन दलीलों में कोई गुणागुण नहीं है।

29. हमने जो मत अपनाया है उस दृष्टिकोण से हमें सुच्चा सिंह बनाम राज्य[1] के मामले के विनिर्णय में दिये गये तर्क के आधार पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। हम सादर यह कह सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने धारा की औचित्यता के सम्बन्ध में निम्नलिखित रूप से सही मत व्यक्त किया था—

> "विधान की विषयवस्तु भूमि का कब्जे वाला या भूमिधारक व्यक्ति है न कि उसके बच्चे।
>
> धारा 5 अनुज्ञेय क्षेत्र के लिये उस माप का उपबन्ध करती है जो उसके या उसके बच्चों के स्वामित्व या धारित क्षेत्र में से चयन करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, चाहे पुरुष या स्त्री को स्वयं चयन करने के लिये कोई अधिकार न दिया गया हो। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह धारा केवल लिंग के आधार पर पुत्र या पुत्री के लिये अनुज्ञेय क्षेत्र के सम्बन्ध में पुत्र और पुत्री के बीच विभेद करती है। विधानमण्डल इस बात के लिये अच्छा निर्णायक है कि प्रत्येक भूस्वामी या भूधारक के पास कितना अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में छोड़ा जाना चाहिए चूंकि किसी भी दी गई परिस्थिति में अनुज्ञेय क्षेत्र के सम्बन्ध में पुरुष और स्त्री भूधारक या भूस्वामी के बीच कोई भी प्रभेद नहीं किया गया है इसलिए संविधान के अनुच्छेद 15 का कोई अतिक्रमण नहीं होता है। यह धारा भूमि के उत्तराधिकार के लिए कोई उपबन्ध नहीं करती है, वह केवल भूधारक या भूस्वामी के वयस्क सदस्यों की संख्या के आधार पर नियत दिन को उसके द्वारा

---

[1] ए० आई० आर० 1974 पंजाब-हरियाणा 162.

धारित या उसके स्वामित्व के क्षेत्र में से प्रत्येक भूधारक या भूस्वामी द्वारा धारित किये जाने वाले अनुज्ञेय क्षेत्र के लिये माप विहित करती है। विधानमण्डल ही अनुज्ञेय क्षेत्र का माप विहित कर सकता है तथा इसके लिए कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता। क्योंकि केवल वयस्क पुत्रों के बारे में ही विचार किया गया है।

30. श्री वेदव्यास ने न्यायाधीश तुली द्वारा व्यक्त मतों के सम्बन्ध में भी निम्नलिखित आक्षेप किया था—

> "यह बात स्पष्ट है कि वयस्क पुत्र और वयस्क पुत्री के बीच प्रभेद न केवल लिंग के आधार पर किया गया है किन्तु इस कारण से भी किया गया है कि पुत्री को सम्यक् अनुक्रम में उसके विवाह के पश्चात् अन्य कुटुम्ब में जाना पड़ता है, विवाह सामान्य रूढ़ि है जो सामान्य रूप से किया जाता है। यह एक सामान्य प्रचलन का संस्थान है जो संगठित और सभ्य समाज और समुदाय का आधार है।

हमारे इस परिवर्तनशील युग में जब महिलाएं घरेलू काम-काज के पश्चात् स्वतंत्र विचार व्यक्त करती हैं तो उन्हें नई विधि की निरर्हताओं द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता और इसे विधायी चातुरिता नहीं कहा जा सकता। किन्तु सहमति या असहमति व्यक्त किए बिना हम यह मत व्यक्त कर सकते हैं क्योंकि महिलाओं का कोई भी सम्पत्ति अधिकार छीना नहीं गया है तथा भेद भाव, यदि कोई है, अधिकारों के सम्बन्ध में नहीं किया गया है किन्तु वह भावनाओं से सम्बन्धित है। श्री अरविन्द कुमार ने जिन्होंने वही दलीलें दी हैं। कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठाए हैं तथा उन्होंने यू० पी० कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1953 (जिसे इसमें इसके पश्चात् चकबन्दी अधिनियम कहा गया है) की दृष्टि से पढ़ने पर विधान में कुछ त्रुटियां पाई हैं। सामान्य शब्दों में दलील जोतों की चकबन्दी से सम्बन्धित विधि के प्रवर्तन के सम्बन्ध में दी गई है।

31. यह एक खेदजनक बात है कि कृषि सुधार सम्बन्धी प्रतिशोध भूमि के विखण्डन को समाप्त करने और कृषि जोतों की चकबन्दी में वृद्धि से व्यवहार में मुकदमों में वृद्धि हुई है और इसके सम्बन्ध में अन्य युक्तियां निकाली गई हैं। अपीलों और पुनरीक्षणों के सम्बन्ध में उपबन्ध तथा संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 136 का अवलम्ब लेने के लिए अपरिहार्य प्रवृत्ति से काल्पनिक मुकदमेबाजी में वृद्धि करने के लिये नए मार्ग खोल दिये हैं। बहुत से किसान भूमि की बजाय मुकदमों की ही खेती कर रहे हैं और हम इसके लिये सम्बन्धित विधि की बहुत प्रक्रम वाली प्रक्रिया को धन्यवाद दे

1980(5) eILR(PAT) SC 118

सकते हैं। इस पर भी हम विद्वान् काउन्सेल की दलील में कोई बल नहीं पाते हैं जिसका कि हम उल्लेख कर सकते हैं।

32. आनुषंगिक दलीलों को छोड़ते हुए मुख्य दलील, जिस पर अभी हम विचार करेंगे, यह है कि जब तक यू० पी० कंसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1953 जैसे समान कानून के अधीन चकबन्दी कार्यवाहियां की जाती हैं तब तक दो परिणाम होंगे। प्रथमतः अधिकतम सीमा सम्बन्धी कार्यवाहियों सहित अब अन्य विधिक प्रक्रियाएं उपशमित हो जाएंगी। चकबन्दी अधिनियम (कंसोलिडेशन ऐक्ट) की धारा 4 के अधीन अधिसूचना राज्य के कई क्षेत्रों के सम्बन्ध में जारी की गई हैं। अधिकांश स्थानों में चकबन्दी कार्य पूरा हो गया है किन्तु कुछ स्थानों में अभी भी वह लम्बित है। विद्वान् काउन्सेल का तर्क यह है कि धारा 4 के अधीन एक बार अधिसूचना जारी कर दिए जाने पर धारा 5(2)(क) प्रवृत्त हो जाती है। पश्चात्वर्ती उपबन्ध धारा 5(2)(क) इस प्रकार है—

> *"अभिलेखों को ठीक करने के लिये प्रत्येक कार्यवाही और क्षेत्र में स्थित किसी भूमि के अधिकारों या हितों की घोषणा के सम्बन्ध में या ऐसे किसी अन्य अधिकार की, जिसके सम्बन्ध में इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां की जा सकती हैं या की जानी चाहिएं, घोषणा या न्यायनिर्णयन के लिये और जो किसी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष लम्बित हों प्रत्येक वाद और कार्यवाही, चाहे प्रथम बार की हो या अपील, निर्देश या पुनरीक्षण हो, ऐसे न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा जिसके समक्ष ऐसे वाद या कार्यवाही लम्बित है, उस निमित्त पारित आदेश बातिल हो जाएगा।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Every proceeding for the correction of records and every suit and proceeding in respect of declaration of rights or interest in any land laying in the area, or for declaration or adjudication of any other right, is regard to which proceeding can or ought to be taken under this Act, pending before any court or authority whether of the first instance or of appeal, reference of revision shall, on an order being passed in that behalf by the court or authority before whom such suit or proceeding is pending, stand abeted :

1980(F) eILR(PAT) SC 118

परन्तु ऐसा कोई भी आदेश पक्षकारों को डाक द्वारा या किसी अन्य रीति में नोटिस दिए बिना और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और भी कि उक्त क्षेत्र या उसके भाग के सम्बन्ध में धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के विवाद्यक पर यथास्थिति ऐसे क्षेत्र या उसके भाग के क्षेत्र की भूमि के सम्बन्ध में ऐसा प्रत्येक आदेश बातिल हुआ माना जाएगा।"

अधिकतम जोत सीमा सम्बन्धी कार्यवाही उपशमित हो गई है और उससे फालतू भूमि नहीं ली जा सकती। यह अभिवाक् केवल आकर्षक है और केवल बनावटी है। हम अब इस अभिवाक् पर विचार करेंगे।

33. जोतों की चकबन्दी की सम्पूर्ण स्कीम उत्तर प्रदेश के भूदृश्य सम्बन्धी कृषि सुधार का पुनर्गठन करने के लिए है ताकि भूमि का टुकड़ों में विभाजित होना समाप्त करके कृषि और आर्थिक जोतों की अभिवृद्धि की जा सके और जोतों की पुनर्व्यवस्था की जा सके। किसी भी व्यक्ति को उसकी भूमि से वंचित नहीं किया जाए। घटित यह हुआ है कि उसके बिखरे हुए उपखण्ड ले लिये जाते हैं और उसके बदले में समान मूल्य के एकीकृत भूखण्ड आबंटित किये जाते हैं तथा समाज के उपयोग और अच्छे उपभोग के लिए उसमें कम से कम कटौती की जाती है। एक बार इस महत्वपूर्ण बात को समझ लेने पर पिटीशनर द्वारा की गई व्यथा स्पष्ट हो जाती है। काउन्सेल ने यह शिकायत की है कि भूधृतिधारक अपनी भूमि का चयन करने के लिए समर्थ नहीं होगा जब चकबन्दी कार्यवाहियां चल रही हों। यह बात सही है कि उस समय उसके पास जो कुछ भी भूमि हो, वह चकबन्दी कार्यवाहियों के पूरे होने के पश्चात् उसकी भूमि हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती है। वैकल्पिक आबंटन किया जा सकता है और इसलिए विकल्प, जो वह फालतू भूमि को अभ्यर्पित करने के प्रयोजन के लिये और अनुज्ञेय जोतों को आरक्षित करने के लिये विहित प्राधिकारी के समक्ष रखेगा, उसका केवल

Provided that no such order shall be passed without giving to the parties notice by post or in any other manner and after giving them an opportunity of being heard :

Provided further that on the issue of a notification under sub-section (1) of Section 6 in respect of the said area or part thereof, every such order in relation to the land lying in such area or part as the case may be, shall stand vacated."

मामूली मूल्य हो सकता है। किन्तु यह तथ्य गम्भीर रूप से भूधारक पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। चूंकि वह उस समय अपने सर्वोतम विकल्प का प्रयोग करेगा जब चकबन्दी अधिकारी उसे समतुल्य भूमि देगा, जबकि उसे पुराने स्थान के बदले में नया प्लाट दिया जाएगा। भूमि की मात्रा और भूमि की क्वालिटी में कोई कमी नहीं हुई है चूंकि चकबन्दी का उद्देश्य वंचित करना नहीं है किन्तु भूमि के बिखरे हुए टुकड़ों को समेकित प्लाट क्रम के बदले प्रतिस्थापित करना है। भूधृतिधारक विहित अधिकारी के समक्ष अपने विकल्प का प्रयोग कर सकता है और यदि तत्पश्चात् चकबन्दी अधिकारी इन भूमियों को लेता है तो भूधृतिधारक को उस भूमि के बदले में अन्यत्र वास्तविक भूमि आबंटित करेगा। इस कानूनी परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा किसी भी प्रकार की कोई कमी या हानि या अन्य प्रतिकूल बात नहीं होती है।

34. चकबन्दी अधिनियम के अध्याय 3 में समता के लिए बहुत ही विस्तारपूर्वक उपबन्ध है तथा चकबन्दी सम्बन्धी स्कीम को अन्तिम रूप देते समय समता, प्रतिकर और अन्य फायदों के लिए भी विस्तृत उपबन्ध किए गए हैं। धारा 19(1)(ख) इस प्रकार है—

> *"इस अधिनियम के अधीन लोक प्रयोजनों के लिये अंशदानों के कारण की गई कटौतियों, यदि कोई हो, के अध्यधीन भूधृतिधारक को आबंटित प्लाटों का मूल्यांकन उसके द्वारा मूल रूप से धारित प्लाटों के मूल्यांकन के बराबर है :
>
> परन्तु चकबन्दी निदेशक, की अनुज्ञा के सिवाय किसी भूधृतिधारक को आबंटित जोत या जोतों का क्षेत्र पश्चात्कथित के पच्चीस प्रतिशत से अधिक उसकी मूल जोत या जोतों के क्षेत्र से भिन्न नहीं होगा।"

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "The valuation of plots allotted to a tenure holder subject to deductions, if any, made on account of contributions to public purposes under this Act is equal to the valuation of plots originally held by him :
>
> Provided that, except with the permission of the Director of Consolidation, the area of the holding or holdings allotted to a tenure-holder shall not differ from the area of his original holding or holdings by more than twenty five per cent of the latter."

जब भूमि लोक प्रयोजनों के लिए दी जाती है तो उसके बदले में प्रतिकर दिया जाता है और अवैध या अन्यायोचित आदेश पारित किए जाने की दशा में अपीली और पुनरीक्षण उपचार भी उपबन्धित किये गये हैं। चकबन्दी स्कीम को अन्तिम रूप दिए जाने के परिणामस्वरूप ऐसा विनिमय या अन्तरण होने पर भूधृतिधारक को उपलभ्य अधिकतम सीमा तक चकबन्दी स्कीम के अधीन नया आवंटन किया जाएगा। इस प्रकार हम भूमि सुधार कार्यवाहियों के चालू रहने में उस समय भी कोई मूलभूत अन्याय और घोर मनमानापन नहीं देखते हैं जब चकबन्दी कार्यवाहियां चालू की जाती हैं। हम विद्वान् काउन्सेल द्वारा उद्धृत **एग्रीकलचरल एण्ड इण्डस्ट्रियल सिंडिकेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] के मामले से भी बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए हैं विशेषतया क्योंकि उसके पश्चात् धारा 5 में एक महत्वपूर्ण संशोधन किया गया है। विधि जैसी कि वह उस समय विद्यमान थी, उपर्युक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई थी। किन्तु उस विनिश्चय के परिणामस्वरूप चकबन्दी अधिनियम की धारा 5 में एक स्पष्टीकरण जोड़ा गया था, जो इस प्रकार है—

> *"स्पष्टीकरण—उपधारा (2) के प्रयोजनों के लिए उत्तर प्रदेश इम्पोजिशन ऑफ सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग ऐक्ट, 1960 के अधीन कार्यवाही या यू० पी० जमींदारी एबोलिशन एण्ड रिफार्म्स ऐक्ट, 1950 की धारा 134 से 137 तक के अधीन अविवादित कार्यवाही को किसी भूमि में अधिकारों या हित की घोषणा के संबंध में कार्यवाही नहीं मानी जाएगी।"

क्षेत्रपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[2] के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सही है और वह श्री अरविन्द कुमार की इस दलील

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Explanation : For the purposes of sub-section (2) a proceeding under the Uttar Pradesh Imposition of Ceiling on Land Holdings Act, 1960 or an uncontented proceeding under Section 134 to 137 of the U. P. Zamidari Abolition and Land Reforms Act, 1950, shall not be deemed to be a proceeding in respect of declaration of rights or interest, in any land."

[1] [1974] 1 एस० सी० आर० 253.

[2] [1975] आर० डी० 366.

को नामंजूर करता है कि चकबन्दी कार्यवाहियों के पूरा होने तक लम्बित चकबन्दी कार्यवाहियों को रोक दिया जाना चाहिए। क्षेत्रपाल सिंह के मामले[1] का शीर्ष टिप्पण विनिश्चयाधार दर्शाता है जिसे हम यहां उद्धृत कर सकते हैं, जो इस प्रकार है—

> "अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन एक स्पष्टीकरण जोड़कर विधिक कल्पना जोड़ी गई है किसी भूमि में अधिकारों या हित की घोषणा के सम्बन्ध में जो अन्यथा कार्यवाही है, उसको ऐसी कार्यवाही नहीं माना गया है। स्पष्टीकरण में यही स्पष्ट विधायी आशय निहित है। साधारणतया स्पष्टीकरण मुख्य धारा की परिधि को स्पष्ट करने के लिए आशयित है और उसकी परिधि को व्यापक या कम करने के लिए आशयित नहीं है किन्तु जहां विधायी आशय स्पष्ट रूप से और असंदिग्ध रूप से ऐसा करने का आशय उपदर्शित करता हो इस तथ्य के होते हुए भी प्रभावी किया जाना चाहिए जहां विधायी आशय को विधानमण्डल ने उस उपबन्ध को स्पष्टीकरण के रूप में नामित किया है।"

35. एक कमज़ोर दलील यह भी दी गई थी कि समय-समय पर कानून को अवैध ठहराने के लिए इस अर्थ में मनमानी की गई थी कि अधिनियम के विभिन्न उपबन्ध बिना किसी क्रम या कारण के विभिन्न तारीखों पर प्रवृत्त किए गए थे और इस प्रकार अस्थायी दृष्टिकोण से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण किया गया था। यह बात सही है कि न तो विधानमण्डल और न ही सरकार अपने मन से नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने के लिए उपबन्ध को कार्यान्वित करने हेतु विभिन्न तारीखें तय नहीं कर सकती है। इस पर भी राज्य को वह तारीख अधिसूचित करने के लिए बहुत ही रियायत दी गई है जिस पर विशेष उपबन्ध प्रवृत्त हो सकता है। तारीख का चयन करने में राज्य बहुत सी सूक्ष्म बातों को भी महत्व दे सकता है और जब कई वर्षों पश्चात् चुनौती दी जाती है तो वे तथ्य, जिनके कारण इन तारीखों का चयन किया गया था, समय के मलबे में दब जाते हैं। पक्षकार इस कमी का फायदा नहीं उठा सकते हैं और प्रत्येक उपबन्ध के प्रवृत्त होने की तारीख को मनमानी तारीख के रूप में चुनौती नहीं दे सकते हैं। प्रस्तुत मामले में धारा 6(1)(जी) को तारीख 8 जून, 1973 से, धारा 6(3) को 10 अक्तूबर, 1975 से, धारा 3(4) को 15 अगस्त, 1972 से और धारा 16 को

---

[1] (1975) आर० डी० 364.

1980(5) eILR(PAT) SC 118

1 जुलाई, 1972 से और धारा 6(1)(ई) को 24 जनवरी, 1971 से प्रवृत्त किया गया है। यह अन्तिम तारीख ही वह तारीख है जिसके कारण विद्वान् महाधिवक्ता को कुछ कठिनाई हुई है, क्योंकि उस तारीख को सब राज्यों में कांग्रेस दल के निर्वाचन घोषणापत्र में पुनरीक्षित कृषि सुधार सम्बन्धी नीति की घोषणा की गई थी और वह दल संघ स्तर पर और अधिकांश राज्यों में शासनरूढ़ था। यद्यपि केवल कोई निर्वाचन घोषणापत्र किसी तारीख को तय करने का आधार नहीं हो सकता। यहां पर इस तारीख का महत्व अधिक है चूंकि अन्ततोगत्वा वह किसी राजनैतिक सरकार की यह घोषणा द्वारा जनता को उसके द्वारा दिया गया यह वायदा था कि कृषि सुधार सम्बन्धी नीति का तदनुसार पुनरीक्षण किया जाएगा। ऊपर उल्लिखित अन्य तारीखें कोई समस्या खड़ी नहीं करती हैं चूंकि वे पूर्ववर्ती अध्यादेश की तारीख या विधेयक के पुर:स्थापन की तारीख से युक्तियुक्त रूप से सम्बन्धित है। इसके विस्तृत ब्यौरे इस निर्णय को भारित करने के सिवाय आवश्यक नहीं हैं। हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि राज्य के पक्षकथन को जब मनमानेपन के आधार पर सांविधानिक चुनौती का सामना करना पड़ा हो तो वह पूर्णरूपेण होना चाहिए जिसमें आक्षेपित उपबन्ध को प्रवृत्त करने की तारीख के लिए भी स्पष्टीकरण होना चाहिए। न्यायालय और काउन्सेल बनावटी तारीखों को स्पष्ट करने के लिए ज्यादा उखाड़ पछाड़ नहीं कर सकते जब कि कई वर्षों पश्चात् कोई उत्साही वादार्थी उसको चुनौती देता है।

36. कुछ अन्य छोटी मोटी त्रुटियों की भी हल्की सी चर्चा की गई किन्तु उन पर गम्भीरता से बिल्कुल भी बहस नहीं की गई है। उदाहरण के लिए यह दलील कि अधिनियम की धारा 38(बी) को, जो स्पष्टत: पूर्व न्याय को अपवर्जित करती है, संविधान के मूल ढांचे के अतिक्रमणकारी होने के रूप में चुनौती दी गई है और वह अन्यथा विधायी सक्षमता का अतिक्रमण करती है। हमारे विचार से ऐसे बहुत से अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों में से प्रत्येक छोटे तर्क का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है जिन्होंने निरर्थक दलीलों की औपचारिक अभिव्यक्ति द्वारा अपने रिट पिटीशनों या सिविल अपीलों को न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न किया है।

37. हम सब अपीलों और सब रिट पिटीशनों तथा सब विशेष इजाजत पिटीशनों को एक साथ खर्चे सहित खारिज करते हैं। सारे मामलों का खर्च 5000 रु० तय किया जाता है।

अपीलें, रिट पिटीशन और विशेष
इजाजत पिटीशन खारिज किए गए।

जैन